प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई

● बाबा श्रीशाही स्वामीजी महाराज

परमाराध्य सन्त सद्गुरु महर्षि मँहीँ परमहंसजी महाराज के हृदयस्वरूप बाबा श्रीशाही स्वामीजी महाराज का यह प्रवचन मास-ध्यान-साधना शिविर, महर्षि मँहीँ धाम, मणियारपुर, बाँका में दिनांक १६.१.२००६ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

प्रेषक—गुणसागर दास

मंगल मूरति सतगुरू, मिलवैं सर्वाधार। मंगलमय मंगल करण, विनवौं बारम्बार॥
ज्ञान-उदधि अरु ज्ञान-घन, सतगुरु शंकर रूप। नमो-नमो बहु बार हीं, सकल सुपूज्यन भूप॥

उपस्थित धर्मानुरागी साधकवृंद, सत्संगप्रेमी, माताओ एवं बहनो !

इस सत्संग के द्वारा ईश्वर-भक्ति का प्रचार होता है। आवश्यकता क्या है ? आवश्यकता ही उद्योग की जननी है। अगर आवश्यकता नहीं जाने तो फिर काम को करे ही क्यों ? संत कबीर साहब के वचन में है—

भक्ति बिन नहीं निस्तरै।

निस्तार पाना चाहते हैं, उद्धार पाना चाहते हैं, अपना परम कल्याण पाना चाहते हैं, तो इसके लिए ईश्वर की भक्ति करनी पड़ेगी—

तब लगि कुसल न जीव कहँ, सपनेहु मन विश्राम।
जब लगि भजत न राम कहँ, सोक धाम तजि काम॥

जबतक राम का भजन नहीं करेंगे, तो जीव को सपने में भी विश्राम, चैन नहीं है।

राकापति षोड़ष उअहिँ, तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइय, बिनु रबि राति न जाइ॥
ऐसेहि बिनु हरि भजन खगेसा। मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा॥

एक चन्द्रमा कौन कहे, सोलह पूर्णिमा के चन्द्रमा उग जायँ; आकाश में जितने तारे हैं, सभी उदित हो जायँ; जितने पहाड़ हैं—पहाड़ कम नहीं हैं, देखिये हिमालय में कितने पहाड़ हैं, दक्षिण भारत में खाली पहाड़-ही-पहाड़ हैं—सबमें आग लगा दी जाय, प्रकाश कम नहीं होगा। फिर भी इतना प्रकाश होने के बावजूद रात रहेगी। रात का जाना तब होगा, जब सूर्य का उदय होगा। ऐसा ही समझिये अपने कल्याण के लिए तमाम साधन कर लीजिये, लेकिन जब तक ईश्वर-भक्ति रूपी सूर्य का उदय नहीं होगा, आपका कल्याण नहीं होगा। ईश्वर-भक्ति में सबसे पहली बात है—ईश्वर या परमात्मा के होने में विश्वास।

जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीती होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई। जिमि खगेस जल कै चिकनाई॥

(गो० तुलसीदास, रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड)

जानोगे नहीं तो होने में विश्वास नहीं होगा। विश्वास नहीं होगा, तो प्रेम नहीं होगा, जब प्रेम ही नहीं होगा तो भक्ति कैसे होगी ?

प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिम्भ विचार।
उदर भरन के कारने, जनम गँवायो सार॥

ईश्वर के होने में विश्वास होना चाहिए कि ईश्वर है। कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वर नाम की कोई चीज है नहीं, लेकिन यह बात मन में बैठती नहीं है, इसलिए कि इसकी खोज बहुत पुराने जमाने से है। इसकी खोज में बहुत पुराने विचार के लोग लगे हुए हैं। वही नहीं है, यह कहते नहीं बनता। उसका होना निश्चित है। वह भुलाये नहीं भूलता, बार-बार याद आता है और इतना आवश्यक है कि उसके बिना काम नहीं चलता है। लोग कठिन-से-कठिन परिस्थिति में पड़ जाते हैं, अगर वह नहीं है तो लोग किसके बल पर अपने साहस को बनाये रख पाते हैं। हमारे परमाराध्य कभी-कभी एक कहानी कहते

थे—किसी जमाने में यूनान का कोई बादशाह बीमार पड़ा। उसकी चिकित्सा में अच्छे-अच्छे वैद्य-हकीम लगे, फिर भी बीमारी घटने के बजाय बढ़ती ही जाती थी। हकीमों को, वैद्यों को चिन्ता हुई। आखिर क्या होना चाहिए। बादशाह सलामत दिन-प्रतिदिन कमजोर होते जा रहे हैं। सबों ने विचार किया—अगर इस तरह का कोई आदमी मिल जाय, इस रूप-रंग का, इस शील स्वभाव का, इस उम्र का—उसके पित्ताशय अर्थात् कलेजे से वह दवा बनायी जा सकती है, जिससे बादशाह सलामत चंगे हो जायेंगे। सबों ने जाकर बादशाह को सुनाया। बादशाह ही था, आदेश कर दिया कर्मचारियों को—'खोजो इस तरह के आदमी को।' बहुत लोग निकले खोजने। संयोग से एक लड़का मिल गया, जो बहुत गरीब था। उसके माता-पिता को बहुत-सा धन देकर खरीद लिया और बादशाह के सामने ले जाकर हाजिर किया। बादशाह ने वैद्यों-हकीमों को बुलाकर पूछा—'इससे काम चलेगा?' कहा—'ठीक है, इससे काम चल जाएगा।' तब उन्होंने काजी को बुलाया। काजी कहते हैं न्यायाधीश को, जज को। कहा—'इसके कलेजे से मेरी दवा बनेगी, इसलिए इसको मारना पड़ेगा, कत्ल करना पड़ेगा, तो इसमें आप क्या न्याय देते हैं?' काजी ने कह दिया—'मुल्क के बादशाह के जीवन की रक्षा के लिए यदि एक-दो रियाया की जान ली जाय, तो कोई गुनाह नहीं है।' दे दिया न्याय। जल्लाद को आदेश दे दिया कि इसको मारो। जल्लाद की तलवार उठ गई। जैसे ही जल्लाद की तलवार उठी, **लड़का आकाश की तरफ देखकर हँस दिया।** बादशाह देख रहा था। इशारे से जल्लाद को रोका, तब लड़के से पूछा—'ऐ लड़के! तुम इस कठिन-से-कठिन मुसीबत काल में हँसे, इसके अन्दर क्या रहस्य है?' लड़के ने कहा—'बादशाह सलामत! इसके अन्दर बहुत बड़ा रहस्य है।' कहा—'वह क्या?' लड़के ने कहा—'देखिये, संसार में सबसे पहले कोई सहारा है तो माता-पिता। माता-पिता अपने बच्चे के लिए क्या नहीं करते हैं! जब से बच्चा पैदा होता है, तब से माता-पिता को चिंता हो जाती है कि किस तरह से सुखी-सम्पन्न, धनवान-यशवान्-विद्वान् आदि होकर रहेगा। सो हमारे माता-पिता ने धन के लोभ में कत्ल करने के लिए मुझको बेच दिया। दूसरा सहारा होता है न्यायाधीश का। जब अपना वश नहीं चलता तो लोग कोर्ट-कचहरी की शरण लेते हैं। तो आपके न्यायाधीश ने मुझे कत्ल करने का फैसला सुना दिया, जबकि मैंने कोई गलती नहीं की, कोई अपराध नहीं किया। अंतिम सहारा होता है देश के मालिक का। जब सब तरफ से लोग हार जाते हैं तो देश के मालिक के सामने आत्मसमर्पण कर देते हैं। सो आप मेरे पिता के समान हैं। मैं आपकी संतान के समान हूँ। आप अपने सामने अपने जीवन की रक्षा के लिए मुझे कत्ल करवाने जा रहे हैं, तो मैं ऐसी निसहाय अवस्था में आ गया हूँ। इसलिए यह सोचकर मैंने दीन-दुनिया के मालिक की तरफ देखकर कहा—**'प्रभु! संसार की लीला देख ली, अब तेरी लीला देखनी है कि जल्लाद की तलवार का तू क्या करता है।'** कहना था कि बादशाह का हृदय पिघल गया, वह सिंहासन से उठा और लड़के को छाती से लगाकर बोला—'बेटे! तू मुझे क्षमा कर दे। अब तेरे ऊपर जल्लाद की तलवार नहीं उठेगी।'

तो इस तरह मुसीबत में पड़कर ऐसा साहस बनाये रखते हैं, अगर वह (ईश्वर) नहीं है, तो किसके बल पर! बहुत लोग कहते हैं कि हम कहाँ देखते हैं? देखते तो बहुत कुछ नहीं हैं। कितने तो माता के गर्भ में थे, तभी उनके पिता चल बसे। उस लड़के ने पिता को नहीं देखा तो क्या कहेगा कि हम बिना पिता के हैं? कहने

का मतलब क्या है कि ईश्वर परमात्मा नहीं होता तो कहीं कुछ नहीं होता। हरएक जानता है कि कर्त्ता के बिना क्रिया नहीं होती। यहाँ जो इतने लोग बैठे हैं, यह सत्संग-हॉल बिना बनाये बन गया है। यह घर बिना बनाये बन गया है। जब यह हॉल बिना बनाये नहीं बन सकता है, यह घर बिना बनाये नहीं बन सकता है, तो इतना बड़ा संसार बिना बनाये कैसे बन गया है? अगर कोई कहे कि यह संसार सदा से है ही, तो उसमें परिवर्त्तन कैसे होता है? इसी संसार में ठंढ का मौसम है, गर्मी का मौसम है, फिर बरसात का मौसम है; छः ऋतुएँ हैं; कभी दिन है तो कभी रात है—ये तमाम परिवर्त्तन कैसे हो जाते हैं? जिसका परिवर्त्तन होता है, उसका विनाश होता है। हम-आपका शरीर सदा से ऐसा ही है? किसी दिन बच्चा था, सयाना हुआ अब बूढ़ा हो गया। अब क्या होगा? जिसका परिवर्त्तन होता है, उसका विनाश होता है। विनाश उसका होता है, जिसकी उत्पत्ति होती है। उत्पत्ति नहीं तो विनाश कैसे? संसार में परिवर्त्तन हमलोग प्रत्यक्ष देख रहे हैं। इसका विनाश होगा, जितने धर्मग्रंथ हैं, सबों में लिखा हुआ है कि ईश्वर है। ईश्वर सबसे पहले का है। तब यह संसार बना है और उसी के द्वारा चल रहा है। कहने का मतलब ईश्वर या परमात्मा के होने में विश्वास चाहिए। अब बात रही कि **वह ईश्वर या परमात्मा जो है, कैसा है? आपके धर्मग्रंथों में बहुत-से नाम-रूपों में बताया गया है, लेकिन बहुत-से नाम-रूपों में बतलाकर यह नहीं कहा गया है कि वह बहुत है। उसके बहुत-से नामरूपों में वह एक है कौन**, यह जानना अवश्यक है। अगर कोई सोचता है, केवल नाम-रूप के ज्ञान से काम चल जाएगा तो आजतक काम नहीं चला है। अगर अबतक काम नहीं चला है, तो आगे भी काम नहीं चलेगा। भगवान् राम के पिता होने का सौभाग्य राजा दशरथ को हुआ, तो क्या हुआ? भगवान् राम को बनवास हो गया, उनके विरह में दशरथ ने अपने शरीर का परित्याग कर दिया।

राजा दशरथ शरीर छोड़ने के बाद सुरधाम चले गये। अगर स्वर्ग गये तो क्या हुआ? जबकि भगवान् राम ने स्वयं कहा है—

स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई।

स्वर्ग में जो सुख है, वह स्वल्प अर्थात् थोड़ा और अन्त में दुःख लगा हुआ है। पाण्डव लोग भगवान् कृष्ण के बहुत ऊँचे दर्जे के भक्त थे। उन पाण्डवों की अंतिम गति क्या हुई? महाभारत पढ़कर देखिये, नरक हुआ और नरक के बाद स्वर्ग मिला। स्वर्ग आये तो क्या हुआ? जबकि श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है—स्वर्ग में जानेवाला तभी तक वहाँ रहता है, जबतक उसके पुण्य की पूँजी रहती है। पूँजी समाप्त हो जाती है तो संसार की योनियों में चक्कर लगाना पड़ता है। कहने का मतलब राजा दशरथ को स्वर्ग हुआ या पाण्डवों को ही स्वर्ग हुआ, तो क्या हुआ! इसलिए परमात्मा के सच्चे स्वरूप के ज्ञान को जानिये। ऐसे तो परमात्मा को सगुण-साकार रूप में बतलाया गया है और निर्गुण-निराकार रूप में बतलाया गया है; लेकिन न ही परमात्मा सगुण-साकार है, न ही निर्गुण-निराकार है। हमलोग रोज गाते हैं—'निर्गुण सगुण के पार में'। ये दोनों संज्ञाएँ जो हैं, क्या हैं? जो गुण के साथ है, वह सगुण है। जो आकार के साथ है, वह साकार है। जो गुण को छोड़कर है, वह निर्गुण है, जिसने आकार को छोड़ दिया है, वह निराकार है। तो वह है क्या? वही है परमात्मा—जो परम तत्त्व आदि-अन्त-रहित, असीम, अजन्मा, अगोचर, सर्वव्यापक और सर्वव्यापकता के भी परे है, उसे ही सर्वेश्वर-सर्वाधार मानना चाहिये—ऐसा जो है, वही परमात्मा है। ऐसे परमात्मा को प्राप्त करना है। ऐसा परमात्मा हम- आपके सब तरफ है ही,

अन्दर में है ही, तो प्राप्त करने की क्या आवश्यकता है, इसलिए कि उसकी पहचान नहीं है। आपके सामने कोई बहुमूल्य चीज है, हीरा है, पारस है, आप नहीं पहचान रहे हैं, आपके लिए वह कंकड़-पत्थर के समान है। निधि तो उसके लिए है जिसको उसकी पहचान है। गो० तुलसीदासजी महाराज लिखते हैं—

करतल गत न परहि पहिचाने।

विश्वास कीजिये, परमात्मा सबको हथेली में प्राप्त है। जो चीज जितनी आवश्यक है, वह चीज उतनी ही सुलभ है। आपको आवश्यक है अन्न, अन्न से ज्यादा आवश्यक है जल। अन्न के बिना जितनी देर रह सकते हैं, उतनी देर जल के बिना नहीं रह सकते हैं। अन्न के लिए जितना प्रयास करना पड़ता है, जल के लिए उतना प्रयास नहीं करना पड़ता। जल से भी ज्यादा आवश्यक है गर्मी। जल के लिए तो कुआँ खुदवाना, चापाकल गड़वाना पड़ता है, लेकिन गर्मी के लिए उतना प्रयत्न नहीं करना पड़ता। थोड़ा-सा आप भीतर से बाहर चले जाइये, आपको सूरज की गर्मी मिल जाएगी और उससे भी ज्यादा आवश्यक है हवा। हवा के बिना तो आप एक क्षण भी नहीं रह सकते हैं। गर्मी के लिए तो आपको घर से बाहर भी निकलना पड़ता है, हवा के लिए तो जहाँ हैं, वहीं हवा लेते रहिये। परमात्मा सबसे ज्यादा आवश्यक है, इसलिए परमात्मा सबसे ज्यादा सुलभ है—सिर्फ जान लेने की बात है, पहचान लेने की बात है—'करतल गत न परहि पहिचाने।'

परमात्मा हथेली में है, लेकिन पहचान में नहीं आ रहा है। पहचान में क्यों नहीं आ रहा है? ज्ञान करने के लिए हम-आपको परमात्मा ने आँख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा पाँच इन्द्रियाँ दी हैं। इन पाँच इन्द्रियों के माध्यम से हम ज्ञान करते हैं। त्वचा इन्द्रिय-संबंधी ज्ञान मायाज्ञान होता है, क्यों? ये हमारा शरीर और इन्द्रियाँ जो हैं, माया के मसाले से बनी हैं। इनके माध्यम से हमारी इन्द्रियों को ज्ञान नहीं होता है, ज्ञान होता है जीवात्मा को ही। इन्द्रियों से जो ज्ञान करते हैं, इन्द्रिय-संबंधी ज्ञान हो जाता है। उसी तरह से जिस तरह से आप चश्मा लगाकर देखते हैं। चश्मा नहीं देखता है, आँख देखती है। कैसा देखते हैं? जैसा चश्मे का रंग है, गुण है। यथार्थ कब देखेंगे, जब चश्मे को उतार कर देखेंगे। उसी तरह से इन्द्रियाँ शरीर के साथ-साथ जब ज्ञान करेंगे, वह इन्द्रिय-ज्ञान होगा, माया-ज्ञान होगा; परमात्मा का ज्ञान नहीं होगा। परमात्मा का ज्ञान करने के लिए आपको अपने से ज्ञान करना होगा। अपने का ज्ञान होता क्यों नहीं? इसलिए कि पहले अपने का ही ज्ञान नहीं है, जबतक अपने का ज्ञान नहीं होगा, तो परमात्मा का ज्ञान कैसे होगा? जैसे अपने शरीर का ज्ञान है तो दूसरे के शरीर का ज्ञान कर रहे हैं, संसार का ज्ञान कर रहे हैं। अगर सोये होते तो अपने ही शरीर का ज्ञान नहीं होता कि यहाँ कौन सब आये, क्या सब हुआ! जिस तरह अपने शरीर के ज्ञान में रहने के कारण तमाम शरीर का ज्ञान हो रहा है। हमारा शरीर पाँच तत्त्व का बना हुआ है, सबका शरीर पाँच तत्त्व का बना हुआ है, सारा संसार पाँच तत्त्व का बना हुआ है। उसी तरह से हम अपने आपके ज्ञान में हो जायेंगे, हम क्या हैं? जो परमात्मा है, वही हम हैं—'ईस्वर अंस जीव अबिनासी', इसलिए अपने आपका ज्ञान कैसे होगा? अपने आपका ज्ञान करने के लिए अपनी ज्ञानमयी धारा को अपनी तरफ करना पड़ेगा। जैसे आप अपने शरीर की तरफ देखना चाहते हैं, तो अपनी दृष्टि को अपने शरीर की तरफ करते हैं, तो अपने शरीर को देखते हैं। तो दृष्टि को अपनी तरफ समेटिये। आँख में जो देखने की शक्ति है, उसी का नाम है दृष्टि। इसलिए अपनी आँख को बन्द कीजिये। आँख

बन्द करने के बाद क्या देखते हैं ? हरएक आँख बन्द करने के बाद अंधकार देखता है। हमलोगों के अन्दर केवल अंधकार ही होता, तो आँख में रोशनी कैसे होती, मुँह में बोली कैसे होती ? हम आपके अन्दर प्रकाश भी है, शब्द भी है। यही तीन पर्दे हैं। जबतक ये तीन पर्दे के अन्दर रहेंगे, इन पर्दों से संबंधित ज्ञान होगा, लेकिन परमात्मा का ज्ञान नहीं होगा। परमात्मा का ज्ञान इन तीन पर्दों के परे होने के बाद होता है। इन तीन पर्दों से परे होने के लिए आपको अपने शरीर में चलना होगा। शरीर में तो रोज ही चलते हैं, लेकिन यह चलना नीचे की तरफ होता है। नीचे की तरफ है अज्ञान की तरफ। इसलिए ऊपर की तरफ चलिये। ऊपर की तरफ चलना ज्ञान की तरफ चलना है। जैसे स्वप्नावस्था से जाग्रतावस्था में चले आये तो पता चल गया कि स्वप्नावस्था वाला ज्ञान कैसा था, उसी तरह से इसके ऊपर चले जाइयेगा तो इस अवस्था का पता चल जाएगा कि इसके परे क्या है। यह ज्ञान जानने में आ जायेगा। इसके परे वही परमात्मा है। इन तीनों अवस्थाओं से ऊपर चले जायेंगे तो वही परमात्मा का ज्ञान होगा। यही ज्ञान अन्तिम ज्ञान है। अन्तिम ज्ञान में अन्तिम सुख होगा, जिस सुख में सारे दुःखों का, सारे क्लेशों का सदा के लिए अन्त हो जाएगा। इसके लिए आपको साधन करना है, वही साधन जो आपलोग कर रहे हैं। वही मानसजप, मानसध्यान, दृष्टिसाधन और नादानुसंधान की क्रिया। इन चार साधनों को करके आप अपने आपके ज्ञान के साथ-साथ परमात्मा का ज्ञान कर लीजिये—**'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।'** यही आपलोगों की सेवा में सुनाया।

बोलिये श्रीसद्गुरु महाराज की जय !

अन्न-वस्त्र

गेरुआ वस्त्र पहनने की क्या जरूरत है ? वेश में क्या है ? गेरुआ वस्त्र पहनने से मन में पवित्र भाव उदित होता है। जैसे फटी जूती, फटे कपड़े पहनने से मन में दैन्य-दारिद्र्य का भाव आ जाता है; कोट, पतलून और बूट पहनने से सहज ही मन में अहंकार-अभिमान उठता है, मलमल की काली किनारवाली धोती पहनने से फुर्ती आने लगती है और आप ही प्रेमगीत गाने की इच्छा होती है, वैसे ही संन्यासी के गेरुआ वस्त्र पहनने पर मन में सहज ही पवित्र भाव उठने लगते हैं। यद्यपि वेश में कोई विशेष महत्त्व नहीं है, फिर भी हर प्रकार के वेश का कुछ अपना प्रभाव होता है।

शुरू-शुरू में पौधे के चारो ओर घेरा लगाकर गाय-बकरी आदि से बचाना पड़ता है। पर एक बार वह पौधा बढ़कर बड़ा वृक्ष बन जाए तो फिर कोई भय नहीं रह जाता। तब तो सैकड़ों गाय-बकरियाँ आकर उसके नीचे आसरा लेती हैं, उसके पत्तों से पेट भरती हैं। इसी तरह साधना की प्रथम अवस्था में स्वयं को कुसंगति और सांसारिक विषय-बुद्धि के प्रभाव से बचाना चाहिए। पर एक बार सिद्धिलाभ हो जाने से फिर कोई भय नहीं रहता। तब कुभाव या संसारासक्ति तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी, बल्कि अनेक लोग तुम्हारे पास शान्ति प्राप्त कर सकेंगे।

एकबार किसी छात्र ने श्रीरामकृष्ण से पूछा—'महाराज, जब सब जीवों के भीतर एक ही परमेश्वर विराजमान हैं तो फिर चाहे जिस व्यक्ति के हाथ का खाने में क्या हर्ज है ?' पूछने पर पता चला कि वह ब्राह्मण था। तब श्रीरामकृष्ण ने कहा, "इसीलिए तुम ऐसा पूछ रहे हो। अच्छा, बताओ, अगर तुम एक दियासलाई जलाओ और उसके ऊपर ढेर-सी सूखी लकड़ियाँ रख दो तो क्या होगा ?" वह छात्र बोला, 'लकड़ियों के बोझ से आग बुझ जाएगी।' तब श्रीरामकृष्ण ने कहा, "पर अगर तुम बहुत बड़ी धधकती चिता में हरे केले के पेड़ झोंक दो तो क्या होगा ?" छात्र ने उत्तर दिया, 'केले के पेड़ देखते-ही-देखते खाक हो जायेंगे।' तब श्रीरामकृष्ण बोले, "इसी तरह, यदि तुम्हारे भीतर आध्यात्मिक शक्ति का प्रमाण अल्प हो तो बिना विचारे चाहे जिसके हाथ का खाने से वह नष्ट हो जायेगी, परन्तु यदि वह प्रबल हो तो किसी भी तरह का अन्न तुम्हें नुकसान नहीं पहुँचा पायेगा।"

—श्रीरामकृष्णदेव की अमृत वाणी